अङ्क-२५
जनवरी-जून २०१५

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

वैदिकवाङ्मय में मानवाधिकार की अवधारणा

डॉ. वत्सला

प्राकृतिक अथवा आदिम अवस्था का मानव असभ्य था। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का सिद्धान्त था। मनुष्य अपना जीवन सरलता तथा स्वतन्त्रता के साथ व्यतीत करता था। वह अपनी केवल तीन आवश्यकताओं - भोजन, वस्त्र, आवास की पूर्ति करके स्वतन्त्र बना रहता था। शनैः-शनैः जब मानव विकास के सोपान पर आरूढ़ हुआ तब परिवार, समूह, समाज का निर्माण सभ्यता तथा संस्कृति के साथ हुआ। जब समाज, ग्राम और नगर के रूप में बने तब समाज की जटिलताएँ बढ़ने लगीं क्योंकि मानव चेतनायुक्त विवेकशील, जागरूक प्राणी है। जिसके परिणामस्वरूप कर्त्तव्य व अधिकार की समस्या का जन्म हुआ। वैदिकवाङ्मय में यद्यपि मानवाधिकार शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् ही भारतीय सभ्यता, संस्कृति, मानवता, नैतिकता, मानवीय मूल्यों (जीवन मूल्यों) के उद्गम स्थल हैं। इन ग्रन्थों में ही मानवाधिकार का उत्स अन्तर्निहित है। वैदिक जीवन-दर्शन व्यक्तिनिष्ठ न होकर समाजनिष्ठ है। वैदिक समाज में समष्टि की भावना सर्वोपरि थी इसका निदर्शन है कि इस युग में समस्त अनुष्ठान सामूहिकता से परिपूर्ण हैं।

वैदिककालीन सामाजिक जीवन सर्वोदय अथवा सर्वकल्याण की भावना अर्थात् आपसी एकता, परस्पर सहयोग, सद्भाव, सौहार्द्र तथा संगठन पर आधृत था। व्यक्ति ही समाज का मुख्य अङ्ग था। सम्पूर्ण समाज एक परिवार के सूत्र में बँधा हुआ था। अथर्ववेद के एक मन्त्र के अनुसार प्रबुद्धजनों को गिरे हुए अर्थात् पतित लोगों को बार-बार उठाएँ - **'उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः०'**[१] अथर्ववेद के एक दूसरे मन्त्र में कहा गया है - हे मनुष्यों ! तुम सौ हाथों से सञ्चय करो और सहस्त्र हाथों से उसका वितरण करो - **'शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त सं किर'**[२] यह प्रवृत्ति न केवल उदारता और निःस्पृहता की द्योतक है अपितु उस साम्राज्यवाद का भी प्रतीक है जिसमें किसी प्रकार के एकाधिकार और अनावश्यक पदार्थ सञ्चय के लिए कोई स्थान नहीं था।

वेदों में कहा गया है - **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** वेद समस्त धर्मों का मूलाधार है। धर्म शब्द बहुत व्यापक है इसके अन्तर्गत ही अधिकार और कर्त्तव्य संवलित हैं। वेदों में ऐसी अनेक ऋचाएँ, सूक्त, मन्त्र तथा उपाख्यान हैं जिनके अन्तर्गत मानवाधिकार के बीज अन्तर्निहित हैं। वैदिककाल में जहाँ तक

---

[१] अथर्ववेद, ४/१३/१
[२] तत्रैव, ३/२४/५

मानवाधिकारों का प्रश्न है तो इस युग में अधिकारों का उल्लेख नहीं मिलता है बल्कि केवल कर्त्तव्यों की बात कही गयी है। कर्त्तव्यों के आधार पर ही समाज को चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में विभाजित किया गया था।[३] अधिकार और कर्त्तव्य में कोई विभेदक तल नहीं था। समाज के लोग अपने वर्णानुसार कर्त्तव्यों का पालन करते थे। मानव जीवन को चार आश्रमों में विभक्त कर पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य था। अतएव मानव-जीवन सुरक्षा संरक्षा के साथ स्वतः गतिमान था। कर्त्तव्यपालन की बात श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कही है - **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'**[४] अर्थात् कर्त्तव्य (कर्म) पर ही अधिकार है उसके फल पर कभी नहीं। अधिकार-प्राप्ति हेतु निस्पृह होकर निरन्तर कर्त्तव्यपालन की प्रेरणा भगवान् श्रीकृष्ण ने गाण्डीवधारी अर्जुन को इस श्लोक द्वारा प्रदान किया था। गीता में प्रतिपादित निष्काम-कर्मयोग का मूल ईशावास्योपनिषद् में उपलब्ध होता है:-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥[५]

इस संसार में शास्त्र नियत कर्मों को करते हुए ही दो सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। इस प्रकार त्यागभाव से किए जाने वाले कर्म मानव को बन्धन में नहीं डाल सकेंगे। इस मन्त्र में भी त्यागभाव से, निष्कामभाव से कर्म करने का उपदेश दिया गया है। इसी प्रकार:-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥[६]

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी यह चराचरात्मक जगत् दृष्टिगत हो रहा है, वह सम्पूर्ण जगत् ईश्वर से व्याप्त है। इसलिए उस ईश्वर को साथ रखते हुए त्यागपूर्वक सांसारिक पदार्थों का भोग करो, उन पदार्थों में आसक्ति मत रखो; क्योंकि यह धन किसका है ? अर्थात् किसी का भी नहीं है। ईश्वर से युक्त सम्पूर्ण भोग्य पदार्थों का आसक्तिरहित होकर त्यागपूर्वक भोग करना चाहिए, यही निष्काम कर्म है। इस श्लोक के माध्यम से भोगवादी संस्कृति को न ग्रहण करने की प्रार्थना की गयी है जबकि आज का मानव उपभोक्तावादी संस्कृति के पीछे बेलगाम घोड़े की तरह भाग रहा है। विधिवेत्ता जूरिस डुहुइट ने भी

---

[३] वैदिक सूक्त कुसुमाञ्जलि: - पुरुषसूक्त - १२
ब्राह्मणोऽस्य मुश्धमासीद् बाहू राजन्यः कृत।
उरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥
[४] श्रीमद्भगवद्गीता, २/४७
[५] ईशावास्योपनिषद्, ०२
[६] तत्रैव, ०१

अपनी सुप्रसिद्ध रचना 'ड्यूटी बेस्ट सोसाइटी गारण्टी फार ह्यूमेन राइट्स' में गीता के इसी (निष्काम-कर्मयोग) के सिद्धान्त को मानों नये रूप में प्रतिपादित किया है। .... यदि व्यक्ति को मूल अधिकार प्राप्त है तो वह है 'सदैव कर्त्तव्यपालन का अधिकार'[७]। इस तरह कर्त्तव्यों से अधिकार स्वतः निःसृत होते हैं व सभी को प्राप्त होते हैं। हमारा देश सदियों से कर्मनिष्ठ रहा है। अन्य देशों के उपभोक्तावादी संस्कृति, बाजारीकरण, भूमण्डलीकरण (वैश्वीकरण) के प्रभाव से हमारा देश भी रुग्ण मानसिकता का शिकार हो गया है। अद्यतन आश्यकता है कि हम अपनी कर्मनिष्ठता को बनाए रखें। भारतीय मनीषियों ने भारतभूमि की श्रेष्ठता का आधार बताकर भारतभूमि को वन्दनीय माना है। इसी वैशिष्ट्य को विष्णुपुराण की निम्न पङ्क्तियों में उद्धृत किया गया है:-

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।
यतो हि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः ॥[८]

(महामुनि जम्बूद्वीप में आज भी भारत श्रेष्ठ है क्योंकि यह कर्मभूमि है; अन्य तो भोग की भूमियाँ हैं।)

हम देखते हैं कि जन्मसिद्ध कर्त्तव्यपालन के निर्वाह में, सङ्घर्ष की नियति के निर्वाह में मानवाधिकारों एवं मानव सभ्यता के विकास की कहानी समायी हुई है। इतिहास प्रमाण है कि मानव ने दो विश्वयुद्ध की विभीषिका को झेला है और तृतीय विनाशकारी युद्ध की सामग्री को एकत्र कर लिया है। जब पृथ्वी परमाणु-अस्त्रों के प्रयोग से राख का ढेर हो जायेगी तब पुनः पृथ्वी पर मानव का जीवन सम्भव न होगा। अतः आवश्यकता है पुनः स्वामी दयानन्द सरस्वती के शब्दों में 'वेदों की ओर लौटने की है। जहाँ परिवार, समाज का कल्याण सर्वोपरि था। स्वार्थलिप्सा से परे व्यष्टि के स्थान पर समष्टि के कल्याण की भावना निहित थी। हमारे चारों अपौरुषेय वेद मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण हैं। अथर्ववेद के अनुसार सभी मनुष्यों का जल, अन्न और प्राकृतिक संसाधनों पर समान अधिकार है -

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥[९]

विश्व के सर्व प्राचीन वैदिकवाङ्मय में मानव मात्र के नैसर्गिक अधिकारों की चेतना सन्निहित है - **'ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।'**[१०] ऋषियों द्वारा प्रोक्त मन्त्रों, सूक्तों,

[७] मानवाधिकार और राज्य - आशाकौशिक, पृ. २४४
[८] विष्णुपुराण, २/२२
[९] अथर्ववेद, ३/३०
[१०] शुक्ल यजुर्वेद के रुद्रपाठे शान्त्यध्याय के नवम पाठ से ग्रहीत

ऋचाओं में मानव मात्र के नैसर्गिक अधिकारों के बीज सन्निहित हैं। ऋग्वेद जो कि विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है उसमें समता के अधिकार के तथ्य इस प्रकार है ;-

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।०
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥
समानो मन्त्र समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥[११]

इस मन्त्र के द्वारा ऋषियों ने समभाव, सद्भाव का सन्देश सदियों पूर्व ही दिया था जो कि राष्ट्रसङ्घ के सार्वभौमिक घोषणापत्र के प्रथम और सातवें अनुच्छेद में ऋग्वेद के इसी तथ्य को लिया गया है। वैदिकसाहित्य का अनुशासन देश अथवा काल की सीमा से परिमित (सीमित) नहीं अपितु यह सम्पूर्ण विश्व में मानवमात्र का नियामक, प्रेरक और मार्गदर्शक है।

ऋग्वेद के दशममण्डल की सभी ऋचाओं में परस्पर सबका कल्याण करते हुए मन, वचन, कर्म को संगठित करने का आह्वान किया गया है। साथ ही समस्त मानव को एक साथ गमन और आगमन, एक सा हृदय और समान मन, सह अस्तित्व की भावना के साथ संसार को संगठित कर आगे बढ़ाने की बात कही गयी है। साथ ही वाणी का उपयोग जगत् के मङ्गल, हित में हो तथा एक दूसरे के प्रति श्रद्धा, कर्म, वचन की बात करते हुए समर्पणभाव से यह कहा है - **'श्रद्धामं भगश्च मूलधनी वचसा वेद यामाशि'** अर्थात् अपने कर्म, वचन से जीवन मस्तक पर निश्चित मानव मूल्यों को श्रद्धा मन में रखते हुए मैं समर्पित रहूँ।

वैदिकवाङ्मय में मन्त्रों, ऋचाओं, सूक्तों के साथ ही आख्यानों का विपुल भण्डार है। इन उपाख्यानों में चरित्र वर्णन के अङ्ग-रूप में मानवाधिकारों का उल्लेख मिलता है। इनमें कहीं परोक्षतः और कहीं अपरोक्षतः मानवाधिकारों (मानव-मूल्यों) का उल्लेख किया गया है। वैदिकसाहित्य में वैदिक-आख्यानों की विशाल शृङ्खला का कतिपय निदर्शन इस प्रकार है – सरमा-पणि का आख्यान (१०/१०८), शुनःशेप आख्यान (१/२४), कक्षीवान् स्वनय का आख्यान (१/१२५), दीर्घतमा का आख्यान (१/१४७), लोपामुद्रा और अगस्त्य का आख्यान (१/१७९), गृत्समद का आख्यान

[११] ऋग्वेद – ५.६०.५; दशम मण्डल, १९१ सूक्त, २-४ मन्त्र

(२/१२), वसिष्ठ और विश्वामित्र का आख्यान (३/५३), सोम के अवतरण का आख्यान (३/४३), वामदेव का आख्यान (४/१८), त्र्यरुण का आख्यान (५/२), अग्नि के जन्म का आख्यान (५/११), श्यावाश्य का आख्यान (५/५२), सप्तवध्रि का आख्यान (५/७८), वृवु एवं भारद्वाज का आख्यान (६/४५), ऋजिश्वा और अतियाज का आख्यान (६/५२), सरस्वती का आख्यान (६/६१), विष्णु के तीन पाद-विक्षेपों का आख्यान (६/६९), बृहस्पति के जन्म का आख्यान (६/७१), राजा सुदास का आख्यान (७/१८), नहुष का आख्यान (७/९५), आसङ्ग का आख्यान (८/१), अपाला का आख्यान (८/९१), कुत्स का आख्यान (१०/३८), राजा असमाति और चार ऋत्विजों का आख्यान (१०/५७), नाभानेदिष्ट का आख्यान (१०/६१), वृषाकपि का आख्यान (१०/८६), पुरूरवा एवम् उर्वशी का आख्यान (१०/९५), देवापि और शान्तनु का आख्यान (१०/९८), नचिकेता और यम का आख्यान (१०/१३५), ब्राह्मणों एवं उपनिषदों में भी अनेक कथाएँ व आख्यान उपलब्ध होते हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों में मन और वाणी में कलह का आख्यान, पुरूरवा-उर्वशी का आख्यान, जलप्लावन का आख्यान, मस्त्योपाख्यान, शुनःशेप-आख्यान, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, कवष-ऐलूष का आख्यान, सौपर्ण आख्यान, कमलनाल चुराने वाले चोरों का आख्यान आदि। उपनिषदों में नचिकेता और यम का आख्यान, सत्यकाम और जाबाल का आख्यान, आरुणि और श्वेतकेतु का आख्यान, सनत्कुमार एवं नारद-आख्यान, इन्द्र एवं विरोचन, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी-आख्यान, प्रतोर्दन एवम् इन्द्र का आख्यान, देवासुर सङ्ग्राम का आख्यान, उमा हैमवती का आख्यान आदि। ब्राह्मण-ग्रन्थों के अर्थवाद-भाग के अन्तर्गत विविध आख्यान उपलब्ध होते हैं, जिन्हें प्रतीकात्मक, ऐतिहासिक एवं लोकप्रिय, दार्शनिक व नीतिमूलक चार भागों में वर्गीकृत किया गया है। मानवीय-मूल्यों से सम्बन्धित ये उपाख्यान मानवाधिकार के सन्दर्भ में सम्भवतः प्राचीन साक्ष्य प्रस्तुत करने में समर्थ होंगे।

इन आख्यानों में नचिकेता-यम का उपाख्यान कर्त्तव्यपालन, सत्य-आचरण, पितृभक्ति, आत्मसंयम तथा आत्मज्ञान के सदुपदेश से ओतप्रोत है। यम जैसे गुरु के द्वारा अनेक प्रलोभन दिए जाने के उपरान्त भी नचिकेता का आत्मबल न्यून नहीं होता है और आत्मस्वरूप प्रकाशनार्थ निवेदन करता है -

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
वरस्तु मे वरणीयः स एव[१२]

लौकिक प्रलोभनों से बचने के लिए भी मार्ग प्रशस्त करता है। शुनःशेप आख्यान जीवन को गतिशील बनाये रखने तथा कर्माभिरत पुरुष उत्तम फल का भोग करता है। ऐसा सदुपदेश मानव मात्र को प्रदान करता है। सरमा और पणि के आख्यान में इन्द्र द्वारा दूतकर्म के लिए नियुक्त देवशुनी-सरमा

[१२] कठोपनिषद्, १/१/२७

के चरित्र में विश्वासपरायणता, आदर्श स्वामीभक्ति तथा अविचल दृढ़ता जैसे गुणों की अभिव्यक्ति हुई है जो कि नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण है। कक्षीवान् और स्वनय के आख्यान में ऋषि कक्षीवान् द्वारा राजा स्वनय की दानस्तुति का वर्णन प्राप्त होता है जो कि मानवीय मूल्यों (जीवन-मूल्यों) से आपूर्ण है। कितवकथा में नीति के शाश्वत तत्त्व निहित हैं। इसके साथ ही तत्कालीन सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति का यथार्थ स्वरूप उपलब्ध होता है। काक्षीवती घोषा की कथा लोकजीवन की अनुभूतियों एवं नैतिकता की अवधारणाओं से आप्यापित है। याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का संवाद आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। इन वैदिक आख्यानों में उपलब्ध चरित मानवीय मूल्यों (जीवन-मूल्यों) के आगार है और इन्हींके अन्तर्गत मानवाधिकारों की अवधारणा का उत्स समाहित है।

वेदों, उपनिषदों में ऐसे अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं जो सह अस्तित्व, विश्वबन्धुत्व, लोकमङ्गल, सर्वाभ्युदय, विश्वशान्ति की भावना से परिपूर्ण हैं। ईशावास्योपनिषद् में उपलब्ध अधोलिखित मन्त्र शान्ति की भावना से परिपूर्ण है। अद्यतनकाल में भी शान्ति-स्थापना के लिए इसी मन्त्र का उच्चारण किया जाता है ;-

ओम् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
प्रर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥[१३]

कठोपनिषद् में उपलब्ध शिक्षावल्लरी में भी शान्ति की भावना अनुस्यूत है;- 'ऊँ सहनाववतु। सहनौभुनक्तु। सहवीर्यकरवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै। ऊँ शान्तिः ऊँ शान्तिः ऊँ शान्तिः'[१४] इस मन्त्र से धरती पर मानव का जीवन शान्तिपूर्ण, सामर्थ्यपूर्ण हो तथा सभी आपस में प्रेम, सौहार्द्र से रहें; ऐसी कामना की गयी है। तीनों दोषों आध्यात्मिक, आधिदैविक एवम् आधिभौतिक की शान्ति हो। इसी प्रकार ऋग्वेद में प्रतिपादित शान्तिपाठ भी चतुर्दिक् शान्ति के निमित्त ही प्रोक्त है ;-

ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति वनस्पतयः शान्तिः विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥

ऊँ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रम् तन्न आ सुवा॥[१५]

वृहदारण्यकोपनिषद् में प्रतिपादित मन्त्र में भी विश्वाभ्युदय, सर्वाभ्युदय की भावना मानव मात्र के कल्याण के लिए अनुस्यूत है ;-

---

[१३] ईशावास्योपनिषद्
[१४] कठोपनिषद् - शिक्षा वल्लरी
[१५] ऋग्वेद, ५/८२/५

'असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय'[१६] वेदों में सूत्रात्मक पद्धति से समग्र जीवन को सुखमय बनाने के लिए अनेकानेक विषयों की शिक्षा उपलब्ध होती है यथा - **'सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः।'** [१७] तैत्तिरीयोपनिषद् में प्रतिपादित 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' के उपदेश से माता-पिता के प्रति पुत्र का तथा आचार्य के प्रति शिष्यों के कर्त्तव्यबोध की शिक्षा दी गयी है।

इस प्रकार भारत में मानवाधिकारों का उत्स वैदिककाल से ही मन्त्रों, सूक्तों, ऋचाओं के रूप में वेदचतुष्टय, ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में प्रतिपादित है। वैदिक-मन्त्रों के मूल में सर्वाभ्युदय, लोकमङ्गल, विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व, सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय की भावना ही निगूढ है जो मानवाधिकार के ही अन्यतम रूप हैं । जैसा कि उक्त है ;-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत् ॥

द्वितीय विश्वयुद्ध के जिस बीभत्सकारी और विध्वंसकारी परिणामों को देखकर १० दिसम्बर १९४८ को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा राष्ट्रों के बीच मैत्री व शान्ति सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से मानवाधिकारों के लिए जो सार्वभौमिक घोषणापत्र प्रस्तुत किया गया। हम गर्व के साथ कह सकते हैं, कि उसके बीजाङ्कुर इदम्प्रथमतया वैदिकवाङ्मय में ही विद्यमान थे।

डॉ. वत्सला
व्याख्याता (संस्कृत)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
झालावाड-३२६००१
(राजस्थान)

[१६] बृहदारण्यकोपनिषद्, १/३/२७
[१७] तैत्तिरोपनिषद्, शिक्षावल्लरी, १/११